✲ संगठनात्मक आधार : मौलिक विशेषताएं

Ans उपर्युक्त दार्शनिक आधारों के अनुरूप भारतीय समाज को संगठित करने के उद्देश्य से यहां कुछ ऐसी सामाजिक व्यवस्थाओं को निर्मित किया गया जो व्यक्ति और समाज दोनों के सर्वांगीण विकास में योग देने की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इन्हे ही भारतीय समाज के संगठनात्मक आधारों के नाम से जाना जाता है। ये आधार इस प्रकार हैं:

(1) वर्ण-व्यवस्था (Varna-System) — वर्ण-व्यवस्था भारतीय सामाजिक संगठन की आधारशिला के रूप में है। यहां आर्थिक आधार के बजाय व्यक्ति के गुण तथा स्वभाव के आधार पर समाज को चार वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र) में विभाजित किया गया। प्रत्येक वर्ण के अधिकार, दायित्व और व्यवहार एक दूसरे से भिन्न थे। प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह आवश्यक था कि वह अपने वर्ण धर्म के अनुरूप कर्तव्यों का पालन करे। वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत ब्राह्मण वर्ण की स्थिति सबसे उच्च थी, परन्तु इस व्यवस्था के प्रारंभ में जन्म पर आधारित नहीं होकर गुण तथा स्वभाव पर आधारित होने के कारण व्यक्ति का वर्ण-परिवर्तन संभव था। व्यक्ति अपने व्यवहार से किसी उच्च या निम्न वर्ण का सदस्य हो सकता था। ऐसे उदाहरण भी पाये जाते हैं जहां लोगों ने अपने गुण तथा स्वभाव को बदलकर एक वर्ण से दूसरे वर्ण की सदस्यता प्राप्त कर ली। यद्यपि वर्ण व्यवस्था में मुक्त प्रणाली की कुछ विशेषताएं अवश्य पायी जाती हैं, परन्तु व्यवहार के रूप में वर्ण परिवर्तन उतना आसान नहीं था जितना साधारणतः समझा जाता है। समाज में विभिन्न कार्यों की समुचित व्यवस्था की दृष्टि से वर्ण-व्यवस्था का भारतीय समाज के आधार के रूप में विशेष महत्व था।

Kajol

(2) आश्रम-व्यवस्था (Ashram-System) — वर्ण-व्यवस्था का उद्देश्य समाज के जीवन की और आश्रम-व्यवस्था का उद्देश्य व्यक्ति के जीवन को सन्तुलित एवं संगठित बनाये रखना था। आश्रम-व्यवस्था के माध्यम से व्यक्ति के जीवन में भोग, त्याग दोनों के महत्व को स्वीकार किया गया है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति की आयु को 100 वर्ष मानकर उसे 25-25 वर्ष के चार भागों में विभाजित किया गया है जिसमें प्रत्येक को एक आश्रम कहा गया है ये आश्रम चार है — (I) ब्रह्मचर्य आश्रम (II) गृहस्थ आश्रम (III) वानप्रस्थ आश्रम, तथा (IV) सन्यास आश्रम। अपनी आयु के प्रथम 25 वर्ष ब्रह्मचर्य आश्रम में बिताकर व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास करता था। अपने आप में सद्गुणों को विकसित करता था, शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक दृष्टि से अपने को सबल बनाता था। फिर वह विवाह संस्कार के द्वारा गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था, जहाँ वह धर्म की मर्यादा के अनुरूप अर्थ और काम का उपयोग करता, धन कमाता और अपनी काम इच्छाओं की पूर्ति करता हुआ सन्तानोत्पत्ति करता था। यहाँ वह प्रतिदिन पंच महायज्ञ करता हुआ समाज के अन्य सदस्यों एवं पशु पक्षियों तक के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करता। 50 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने पर वह वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करता। वह परिवार की सीमा से बाहर निकलकर सम्पूर्ण समाज के कल्याण हेतु कार्य करता। वह ज्ञान के प्रसार और समाज की सांस्कृतिक परम्पराओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित करता तथा योग्य व्यक्तियों के निर्माण में योग देता हुआ आध्यात्मिक चिंतन में अपने आप को लगा देता। 75 वर्ष की आयु प्राप्त करने पर वह संसार से विरक्त होकर सन्यास आश्रम में प्रवेश कर अंतिम पुरुषार्थ - मोक्ष प्राप्ति का प्रयत्न करता। इस प्रकार आश्रम व्यवस्था के माध्यम से व्यक्ति अपने जीवन काल में चार पुरुषार्थों — धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति की दिशा में आगे बढ़ता है।

(3) जाति-व्यवस्था (Caste System) — भारतीय सामाजिक संगठन को एक महत्वपूर्ण आधार के रूप में जाति-व्यवस्था का महत्व रहा है। भारतीय समाज हजारों ऐसे जातीय और उप-जातीय समूहों में बंटा है, जिनकी सदस्यता का आधार व्यक्ति के गुण एवं स्वभाव नहीं होकर जन्म है भारतीय समाज में कालान्तर में स्तरीकरण के आधार के रूप में बदल गयी गुण तथा स्वभाव का स्थान जन्म ने ले लिया। परिणाम यह हुआ कि वर्ण-व्यवस्था जाति व्यवस्था के रूप में बदल गयी और जाति की सदस्यता पूर्णतः जन्म पर आधारित हो गयी।

यद्यपि वर्ण व्यवस्था परिवर्तन तो फिर भी संभव था, परन्तु एक जाति की सदस्यता छोड़कर किसी अन्य जाति में पहुंचना प्रायः असम्भव था। धीरे-धीरे एक ही वर्ण की विभिन्न जातियों तक में ऊंच-नीच की भावना पनपने लगी। उच्च जातियों में अनेक विशेषाधिकार प्राप्त रहे हैं तो निम्न जातियों को अनेक निर्योग्यताओं से पीड़ित रहना पड़ा है, जाति व्यवस्था के अन्तर्गत प्रत्येक जाति ने अन्तर्विवाह की नीति को अपनाया। प्रत्येक जाति की अपनी जातीय पंचायत भी रही है जो जाति से सम्बन्धित नियमों का पालन नहीं करने वालों को कठोर दण्ड देती रही है, यह व्यवस्था बन्द वर्ग प्रणाली का उदाहरण प्रस्तुत करती है। वर्तमान में जाति व्यवस्था के स्वरूप एवं कार्यों में विभिन्न कारणों से अनेक परिवर्तन आये हैं। इसके बावजूद भी अधिकांश भारतीयों के जीवन को जाति व्यवस्था आज भी अनेक रूपों में प्रभावित कर रही है।

(4) संयुक्त परिवार (Joint-Family) – भारतीय समाज के परम्परागत आधार के रूप में संयुक्त परिवार का विशेष महत्व रहा है। मैक्समूलर ने संयुक्त परिवार को भारत का 'आदि परम्परा' माना है, जो सदियों से भारतीयों को सामाजिक विरासत के रूप में प्राप्त होती रही है। बहुत प्राचीन काल से ही भारतीय समाज की इकाई वास्तव में संयुक्त परिवार ही रहा है, न कि व्यक्ति। संयुक्त परिवार भारतीय संस्कृति के आदर्श तत्वों और समूह कल्याण के सुन्दर आदर्श को प्रस्तुत करता है। एक संयुक्त परिवार उनलोगों का एक समूह है जो साधारणतः एक ही मकान में साथ-साथ रहते हैं, एक ही रसोई में बना हुआ भोजन करते हैं, सभी प्रकार के आय का सम्मिलित रूप से उपयोग करते हैं, सभी सम्पत्ति के संयुक्त स्वामी होते हैं तथा सभी सामान्य पूजा या धार्मिक क्रियाओं में भाग लेते हैं। इसमें साधारणतः तीन-चार पीढ़ियों के रक्त सम्बन्धी होते हैं, यद्यपि कुछ ऐसे सदस्य भी होते हैं, जो रक्त सम्बन्धी नहीं होते। संयुक्त परिवार का एक 'कर्ता' होता है, जिसकी आज्ञा का पालन अन्य सभी सदस्य करते हैं। संयुक्त परिवार जातिगत नियमों के पालन एवं परम्परागत आदर्शों के अनुरूप कार्य करने का विशेषतः प्रयत्न करता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय समाज के कुछ ऐसे परम्परागत आधार रहे हैं जिन्होंने समाज में समन्वयकारी प्रवृत्तियों के विकास में योग दिया। इन आधारों ने व्यक्ति की उन्नति के साथ-साथ समाज के विकास में भी सहायता पहुंचायी। भारतीय सामाजिक व्यवस्था से सम्बन्धित उपरोक्त बातों

ने व्यक्ति को समन्वित जीवन व्यतीत करने हेतु प्रोत्साहित किया, उसे यह सोचने और समझने में सहायता प्रदान की कि वह केवल स्वयं के लिए नहीं जीता है, उसका एक मात्र उद्देश्य रोटी, कपड़ा और मकान ही नहीं है। वह यह जानता है कि इस जीवन के आगे भी कुछ है, वह आत्मा की अमरता, कर्मवाद और पुनर्जन्म के सिद्धांत में विश्वास करता है, पंच सहायकों की धारणा पर जोर देता है तथा पुरुषार्थ के सिद्धांत के अनुरूप लक्ष्यों की प्राप्ति का प्रयत्न करता है।

समाप्त